हमें कैसे पता चला

जीन्स के बारे में?

लेखक: आइज़क एसिमोव

चित्रकार: डेविड वूल

अनुवादक: अशोक गुप्ता

बहुत उत्साह और स्पष्टता से आइजक एसिमोव हमें समझाते हैं कि पिछले १५०-सालों में हर नई खोज के साथ हमारी आनुवंशिकता की संकल्पना कैसे बदली. हमें ज्ञान प्राप्त होता है ग्रेगोर मेंडेल के पौध-प्रजनन, म्यूटेशन (उत्परिवर्तन) और क्रोमोसोम (गुण सूत्रों) का. पुस्तक का अंत होता है एक्स-रे द्वारा उत्पन्न म्यूटेशन और प्राकृतिक म्यूटेशन द्वारा जीवों के क्रमागत-विकास की चर्चा पर.

हमें कैसे पता चला

जीन्स के बारे में

पुस्तक के अध्याय

१. मेंडेल और मटर के पौधे

हम सब यह जानते हैं कि बच्चे आम तौर पर अपने माँ-बाप जैसे ही दिखते हैं. बच्चों के कुछ फीचर माँ जैसे होते हैं और कुछ पिता जैसे. भाई-बहिन भी अक्सर एक दूसरे जैसे ही दिखते हैं. अक्सर लम्बे माँ-बाप के बच्चे लम्बे होंगे; नीली आँखों वाले माँ-बाप के बच्चे नीली आँखों वाले होंगे; काले रंग की त्वचा वाले माँ-बाप के बच्चों की त्वचा भी काली ही होगी.

ये शारीरिक विशेषतायें आनुवंशिक (इनहेरिटेड) होती हैं.

ऐसा सिर्फ मानवों में ही नहीं होता -- ऐसा जानवरों और पौधों में भी होता है. जानवरों के बच्चे भी अपने माँ-बाप जैसे ही दिखते हैं. ओक के पेड़ से जिराफ नहीं पैदा होता और एक सीप से डेन्डिलायन का फूल नहीं निकलता. दो बीगल कुत्ते मिलकर स्पेनियल कुत्ते पैदा नहीं कर सकते.

वंशानुक्रम, जिससे माँ-बाप की शारीरिक विशेषतायें बच्चों को मिलती हैं, कैसे होता है?

मानवों में इसका अध्ययन कठिन है. सबसे पहले तो मानवीय शारीरिक विशेषतायें इतनी ज्यादा हैं कि उनका हिसाब रखना मुश्किल है. फिर, मानवीय बच्चों को बड़ा होने में इतना ज्यादा समय लगता है कि उनकी तुलना उनके माँ-बाप से करने में बहुत प्रतीक्षा करनी पड़ेगी. वैज्ञानिक अध्ययन के लिये हमें एक ही माँ-बाप द्वारा पैदा किये हुए बहुत सारे बच्चे भी चाहिये. परन्तु माँ-बाप का एक जोड़ा इतने सारे बच्चे पैदा नहीं करता.

आख़िरकार, मनुष्यों पर इस तरह का प्रयोग करना ही असम्भव है. तुम एक लम्बी नाक वाले पुरुष की शादी छोटी नाक वाली स्त्री से कर यह अध्ययन नहीं कर सकते कि उनकी संतान की नाक कैसी होगी. या फिर छोटी नाक वाले पुरुष की बड़ी नाक वाली स्त्री से उत्पन्न संतान की नाक कैसी होगी. जिन स्त्रियों-पुरुषों की शादियाँ हो चुकी हैं उनकी नाकों की तुलना उनकी संतानों की नाकों से करनी होगी. इस तरह का अध्ययन बहुत समय लेगा.

आज से करीब डेढ़सौ साल पहले, ऑस्ट्रिया के एक महंत ग्रेगोर जोहेन मेंडेल (Gregor Johann Mendel १८२२-१८८४) को एक विचार आया.

वास्तव में मेंडेल एक हाई-स्कूल का अध्यापक बनना चाहता था. अध्यापक बनने के लिये उसे एक परीक्षा पास करनी थी जिसमें वह तीन बार फेल हो चुका था. वह बहुत निराश था. अपनी खुशी के लिये उसने निष्चय किया
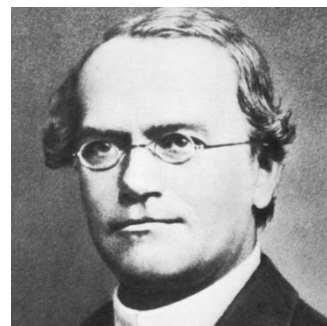
ग्रेगोर जोहेन मेंडेल

कि वह अपना जीवन अपने शौक वनस्पति विज्ञान (बॉटनी) के लिये समर्पित कर देगा.

१८५७ में उसे एक विचार आया. उसने सोचा कि शारीरिक विशेषताओं के वंशानुक्रम के अध्ययन का सबसे अच्छा तरीका है पौधों का प्रजनन.

इस तरीके का फायदा यह है कि पौधे अपनी जगह से नहीं हिलते जिससे उनके प्रजनन को आसानी से कंट्रोल किया जा सकता है.

पौधे फूलों के अंदर सेक्स-कोशिकायें (सेक्स-सेल) पैदा करते हैं. अधिकतर फूलों के केन्द्र में पुष्प-योनि (पिस्टिल) होती है. पुष्प-योनि (पिस्टिल) में होता है बीजाणु (ओव्यूल). और बीजाणु (ओव्यूल) में होता है अंडा-कोशिका (एग-सेल). तुम पुष्प के पराग (पोलन), जिसमें शुक्राणु-कोशिका (स्पर्म-सेल) होते हैं, को एक

पुष्प का क्रॉस-सेक्शन
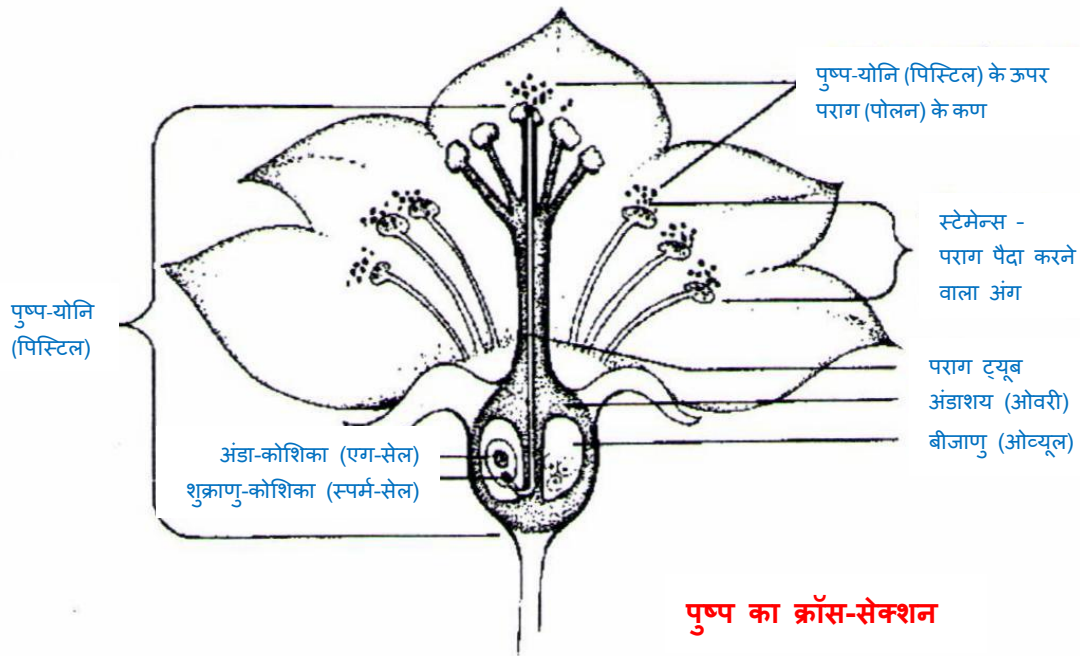
पौधे से निकाल कर दूसरे पौधे की पुष्प-योनि (पिस्टिल) में रख सकते हैं. इसे पार-परागण (क्रॉस-पॉलिनेशन) कहते हैं.

जब पराग पुष्प-योनि के ऊपर पड़ता है तो एक ट्यूब पैदा होती है जिसके माध्यम से शुक्राणु-कोशिका सफर करता है और बीजाणु में अंडा-कोशिका से मिलकर गर्भाधान (फर्टिलाइजेशन) की प्रक्रिया आरम्भ करता है. गर्भाधान के बाद बीजाणु बीज पैदा करता है जिसे अगर बोया जाय तो पौधा उगेगा. फिर आप नये पौधे के लक्षणों की तुलना कर सकते हैं पुराने पौधे से जिससे पराग और बीजाणु मिले थे.

वास्तव में तुम जिस पौधे से पराग लो उसी की पुष्प-योनि पर रख कर गर्भाधान की प्रक्रिया आरम्भ कर सकते हो. इसे स्व-परागण (सेल्फ-पॉलिनेशन) कहते हैं. इस तरह जो बीज पैदा होंगे उनमें माता और पिता एक ही होगा. शायद इससे चीजें आसान हो जायँ.

मेंडेल ने ८-साल तक मटर के पौधों का अलग-अलग तरह से परागण किया और परिणामों का अध्ययन किया.

उदाहरण के तौर पर उसने शुरूआत की मटर के ऐसे पौधों से जो एक या डेढ़ फुट से ज्यादा लम्बे नहीं बढ़ पाते. उसने ऐसे बहुत सारे बौने पौधों का स्व-परागण किया. जब उनमें बीज पैदा हुए, उसने उन्हें बो दिया. हर बीज से बौने पौधे उगे -- बौने मटर के पौधे सत्य-प्रजनित (ब्रेड-ट्रू) हुए.

मेंडेल का बगीचा

फिर उसने लम्बे उगने वाले मटर के पौधों पर काम किया. ये पौधे ६-७ फुट लम्बे उगते हैं. उसने इनका भी स्व-परागण किया और बीज निकलने पर उन्हें बोया. कुछ बीजों से लम्बे पौधे उगे (सत्य-प्रजनन हुआ) परन्तु कुछ बीजों से बौने पौधे उगे (सत्य प्रजनन नहीं हुआ). लगभग ३/४ पौधे लम्बे और १/४ पौधे बौने उगे.

मेंडेल बहुत आश्चर्यचकित हुआ. जब मटर के लम्बे पौधे सब एक से थे फिर उनके प्रजनन में अंतर क्यों -- कुछ पौधे लम्बे और कुछ बौने क्यों उगे?

उसने एक और प्रयोग किया. इस बार उसने पार-परागण किया. उसने लम्बे पौधों (जो सत्य प्रजनित हुये) से पराग लेकर बौने मटर के पौधों की पुष्प-योनि में डाला. और उसने बौने मटर के पौधों से पराग लेकर लम्बे पौधों की पुष्प-योनि में भी डाला. इस तरह जो बीज पैदा हुए उनके माता-पिता में एक लम्बा और एक बौना होगा. इन बीजों को बोये जाने पर पौधे कैसे होंगे? क्या कुछ लम्बे होंगे, कुछ छोटे, या सभी मीडियम ऊँचाई के?

मेंडेल फिर चकित रह गया क्योंकि जैसा वह सोच रहा था वैसा न हुआ. कोई भी पौधा बौना या मीडियम ऊँचाई का न उगा. सब पौधे लम्बे हुए. हर पौधा उतना ही लम्बा उगा जितना कि अगर पराग और बीजाणु लम्बे मटर के पौधों से आये हों. बौने-पन का गुण एक दम गायब हो गया!

मेंडेल ने इन लम्बे पौधों का स्व-परागण किया. कोई भी सत्य-प्रजनित न हुआ! इनसे निकले बीजों से लगभग ३/४ पौधे लम्बे उगे और १/४ बौने.

ऐसा लगा कि बौने-पन का गुण गायब नहीं हुआ था. वह तो सिर्फ एक पीढ़ी में छुप गया था और अगली पीढ़ी में फिर प्रदर्शित हो गया.

मेंडेल ने इस अद्भुत घटना को इस तरह समझाया -- हर पौधे में दो तत्व होते हैं जो वंशानुक्रम के दौरान उसकी शारीरिक विशेषताओं को नियंत्रित करते हैं: इनमें से एक का योगदान माँ की तरफ से होता है और दूसरे का पिता की तरफ से. (मेंडेल को यह नहीं मालूम था कि ये दो तत्व क्या हैं).

लम्बे और बौने-पौधे का पार-परागण

मान लीजिये, जो तत्व पौधों को लम्बा-पन देता है उसे हम T कहें और जो बौना-पन देता है उसे s. बौने पौधों में दो s होंगे. उसे हम ss से दर्शा सकते हैं. ss पौधे के हर शुक्राणु-कोशिका (स्पर्म-सेल) में एक तत्व s होगा, और हर अंडा-कोशिका (एग-सेल) में भी एक तत्व s होगा.
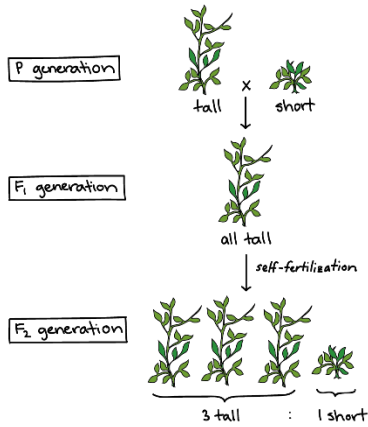
जब बौने पौधे की शुक्राणु-कोशिका को बौने पौधे की अंडा-कोशिका से मिलाया जाय तो बीज को शुक्राणु-कोशिका से एक s मिलेगा और दूसरा s मिलेगा अंडा-कोशिका से. इस तरह बीज में ss होगा और वह बोए जाने पर बौने पौधे को जन्म देगा. ऐसा हर बौने पौधे के साथ होगा. इसे सत्य-प्रजनन कहते हैं.

मटर के लम्बे पौधे में लम्बे-पन के दो तत्व होंगे. इन्हें हम T T कह सकते हैं. इसके द्वारा पैदा किये हर शुक्राणु-कोशिका और अंडा-कोशिका में एक-एक T होगा. इनके मिलन से T T का जन्म होगा. इस तरह लम्बे पौधे भी सत्य-प्रजनित होंगे.

अब मान लीजिये की बौने-पौधे की शुक्राणु-कोशिका s का मिलन लम्बे-पौधे की अंडा-कोशिका T से किया जाय. तब शुक्राणु-कोशिका का s जुड़ेगा अंडा-कोशिका के T से और sT बीज बनेगा. अगर लम्बे-पौधे की शुक्राणु-कोशिका का T का मिलन होता है बौने-पौधे की अंडा-कोशिका के s से तो Ts बीज बनेगा. किसी भी तरह से, sT या Ts, बीज से लम्बे ही पौधे उगेंगे. T का असर s से कहीं ज्यादा होगा. लम्बाई का गुण प्रबल होगा (डोमिनेंट) और बौने-पन का गुण दबा होगा (रिसेसिव).

लेकिन अगर एक Ts (या sT) वाले लम्बे-पौधे को लिया जाय और उससे नए पौधे पैदा किये जांय तो क्या होगा? इस पौधे की शुक्राणु-कोशिका में दोनों तत्वों में से एक होगा -- आधी शुक्राणु-कोशिकाओं में T होगा और आधी में s. ऐसा ही अंडा-कोशिकाओं में होगा -- आधों में T और आधों में s.

अगर शुक्राणु-कोशिकाओं का मिलन अंडा-कोशिकाओं से हो तो, T शुक्राणु-कोशिकाएं T या s अंडा-कोशिकाओं से मिलकर T T या Ts बीज पैदा करेंगे. इसी तरह हर s शुक्राणु-कोशिकाएं T या s अंडा-कोशिकाओं से मिलकर sT या ss बीज बनायेंगी.

		शुक्राणु-कोशिकाएं	
		T	s
अंडा-कोशिकाएं	T	T T	Ts
	s	sT	ss

इस तरह ४ तरह के बीज बनेंगे: T T, Ts, sT, और ss -- सब बराबर संख्या में. T T, Ts, और sT बीजों से मटर के लम्बे पौधे उगेंगे और ss से बौने. सब मिलाकर ३/४ बीजों से लम्बे पौधे और १/४ बीजों से बौने पौधे. T T और ss पौधे सत्य-प्रजनित (ब्रेड ट्रू) होंगे और Ts और sT पौधे, दोनों लंबे पर असत्य-प्रजनित (नॉट ब्रेड-ट्रू) होंगे.

मेंडेल ने मटर के पौधों का परीक्षण लम्बाई के अलावा कई और गुणों के ऊपर किया. उसका तर्क उन सब का भी सही स्पष्टीकरण कर सका. उसने गुणों के जोड़ों का भी अध्ययन किया -- हरे बीज जिनसे लम्बे पौधे उगते हैं, हरे बीज जिनसे बौने पौधे उगते हैं, पीले बीज जिनसे लम्बे पौधे उगते हैं और पीले बीज जिनसे बौने पौधे उगते हैं. वह यह समझा सका की किन परिस्थितियों में पौधों प्रजनन सत्य होगा और किन में नहीं और विभिन्न तरह के पौधों की संख्या का अनुपात क्या होगा.

जब मेंडेल ने यह सब हल कर लिया, उसे लगा कि वैज्ञानिक उसकी बात को गम्भीरता से नहीं लेंगे. आखिर वह है तो केवल एक महंत और शौकिया वनस्पति वैज्ञानिक जो हाई-स्कूल का अध्यापक बनने की परीक्षा भी न पास कर सका.

उसने सोचा उसे अपना शोधपत्र किसी पहुंचे हुए वनस्पति-वैज्ञानिक के पास भेजना चाहिये. अगर उसे मेरा काम अच्छा लगा तो वह उसका प्रचार करेगा और दूसरे वैज्ञानिक भी उस पर ध्यान देंगे.

मेंडेल ने अपना शोधपत्र स्विट्ज़रलैंड के वनस्पति-वैज्ञानिक कार्ल विल्हेल्म वॉन नैघली (Karl Wilhelm von Nageli १८१७-१८९१) को भेजा. नैघली का यूरोप के वनस्पति-वैज्ञानिकों में एक बहुत महत्वपूर्ण स्थान था. उसके पास और भी लोगों के पत्र आते होंगे जो उसे अपने विचारों में उसकी रुचि पैदा करना चाहते हैं.

शायद उसने मेंडेल के शोधपत्र को एक सरसरी निगाह से देखा और सोचा -- एक और शौकिया वैज्ञानिक का काम!

उसने मेंडेल को उसका शोधपत्र वापस भेज दिया. वह बहुत निरुत्साहित हुआ. १८६५ और १८६९ में मेंडेल अपने शोधपत्र को एक छोटे परन्तु अच्छे वैज्ञनिक जनरल में छपाने में सफल हुआ. चूंकि उसके शोधपत्रों को किसी बड़े वैज्ञानिक का प्रोत्साहन नहीं मिला, दूसरे वनस्पति-वैज्ञानिकों ने भी उन पर ध्यान नहीं दिया.

मेंडेल अब तक इतना हतोत्साहित हो चुका था कि उसने पौधों के प्रजनन पर फिर कोई प्रयोग नहीं किया. १८६८ में वह अपने मठ का मठाधीष बना और उसने अपना सारा जीवन मठ के काम में लगा दिया. उसकी मृत्यु १८८४ में हुई. उसे कभी यह भी पता न लगेगा की वह अपनी शोध के लिये एक दिन इतना विख्यात होगा.

नैघली की मृत्यु १८९१ में हुई. उसने कभी सोचा भी नहीं कि उससे एक बहुत बड़ी भूल हुई है. उसके ढेर सारे वैज्ञानिक कामों के बावजूद लोग उसे मेंडेल के काम की महत्वपूर्णता न पहचानने के लिये सबसे ज्यादा याद रखेंगे.

परन्तु फिर, मेंडेल के शोधपत्रों के छपने के ३०-साल से भी ऊपर तक किसी और ने भी उन पर ध्यान नहीं दिया.

२. ड व्रीज और उत्परिवर्तन (म्यूटेशन)

शारीरिक विशेषतायें हमेशा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में आशानुसार ट्रांसफर नहीं होती. पौधे और जानवरों के बच्चे हमेशा अपने माँ-बाप जैसे नहीं दिखते.

कभी-कभी, पौधे और जानवरों के बच्चे अपने माँ-बाप और भाई-बहिनों से अलग दिखते हैं. ऐसा लगता है जैसे आनुवंशिकता (हेरिडिटी) नियंत्रित करने वाली चीज में कुछ गड़-बड़ हो गयी हो.

यह स्पष्ट है कि कुछ गड़-बड़ जरूर हुई है जब कोई छोटा पौधा या जानवर का बच्चा टेड़ा-मेड़ा या विकृत हो और वह ज्यादा दिन जिन्दा न रहे. जैसे दो सर वाला बछड़ा या कोई और खराबी. ऐसे जानवरों को स्पोर्ट (खेल) कहते हैं -- गोया प्रकृति कोई निर्दय खेल खेल रही हो.

पुराने जमाने में, बहुत लोग सोचते थे कि विरूप जानवरों का जन्म अलौकिक शक्तियों द्वारा हमें चेतावनी थी -- कुछ और खराब और अप्राकृतिक होने वाला है. ऐसे जानवरों को राक्षस/दैत्य (मॉन्सटर) भी कहा जाता था. (लैटिन में मॉन्सटर का अर्थ है अपशकुन या चेतावनी).

ऐसे विकृत जानवर अक्सर घरेलू पशुओं में पाये जाते हैं जिनपर ज्यादातर किसान और गड़ेरिया ही ध्यान देते हैं. ऐसे जानवर या तो जल्दी ही मर जाते या मार दिए जाते. अगर कुरूप मनुष्य पैदा होते तो उन्हें अक्सर छुपा दिया जाता या वे जल्दी ही मर जाते.

वैज्ञानिकों ने ऐसे विरूप जानवरों पर कोई ध्यान नहीं दिया; जबकि इनमें से कुछ उपयोगी भी थे.

६-उँगलियों वाला आदमी

छोटी टांगों वाली भेड़

१७९१ में, मैसाचुसेट्स के एक किसान, सैथ राइट, की एक भेड़ ने छोटी टांगों वाले बच्चे को जन्म दिया. बाकी सब तरह से वह स्वस्थ मेमना था. जब मेमना बड़ा हुआ, वह छोटी टांगों के कारण चार-दीवारी फलांग न कर सका और उसे चारागाह में ही रहना पड़ा.

राइट ने सोचा यह तो बहुत अच्छा है. चूंकि टांग छोटी होने से भेड़ चारागाह से बाहर नहीं भाग सकती, और अब उसके पीछे दौड़ कर उसे पकड़ने की जरूरत नहीं!

उसने छोटी टांगों वाली भेड़ों का पजनन किया. इससे उसके पास ढेर सारी छोटी टांगों वाली भेड़ हो गयीं. धीरे धीरे भेड़ें मरने लगीं और उनका झुण्ड खत्म हो गया. कुछ समय बाद एक छोटी टांग वाली भेड़ नॉर्वे में पैदा हुई. फिर से उनका झुण्ड बढ़ने लगा.

परन्तु फिर भी जिन वैज्ञानिकों की आनुवंशिकता के अध्ययन में रुचि थी, इस समस्या पर कोई ध्यान नहीं गया.

फिर १८८६ में एक डच वनस्पति-वैज्ञानिक ह्यूगो ड व्रीज (Hugo de Vries १८४८-१९३५) ने एक दिलचस्प बात देखी.

एक अमरीकी पौधा, शाम का बसन्ती गुलाब (ईवनिंग प्रिमरोज), नैदरलैंड में उगाना शुरू किया गया. ड व्रीज ने इन पौधों का झुण्ड एक घास के मैदान में उगते देखा. ये सब शायद किसी एक पौधे के बीजों से उगे होंगे. पर यह स्पष्ट था कि कुछ पौधे औरों से एकदम अलग -- विकृत थे.
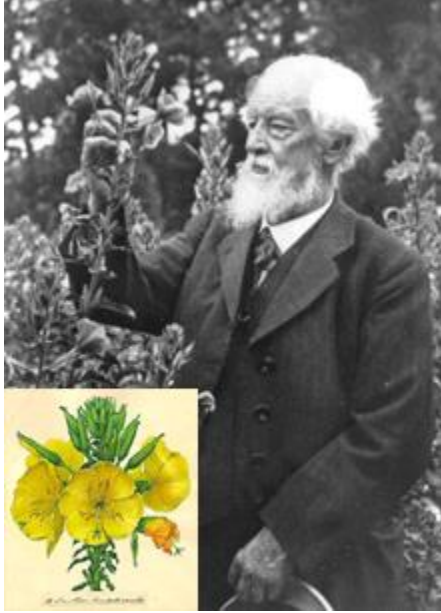
ड व्रीज शाम के बसन्ती गुलाब (ईवनिंग प्रिमरोज) के साथ

उसने कुछ विकृत पौधे मैदान से उखाड़ कर अपने बगीचे में लगा दिये और उनपर मेंडेल के मटर के पौधों की तरह प्रयोग किये (उस समय ड व्रीज मेंडेल के बारे में एकदम अनजान था).

ड व्रीज ने पाया -- जबकि शाम के बसन्ती गुलाब के बीजों से उगे पौधे उसी तरह के होते हैं जैसे कि पौधे जिनसे बीज निकलते हैं, पर कभी कभी नया पौधा पुराने पौधे से काफी अलग पैदा होता है. ड व्रीज ने इस तरह अचानक पीढ़ी में बदलाव आने को उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) कहा (बदलाव को लेटिन में म्यूटेशन कहते हैं). तब से वैज्ञानिक विकृत रूप या दानव की बजाय उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) शब्द का प्रयोग करने लगे.

अपनी शोध में ड व्रीज ने भी वही पाया जो मेंडेल ने. यह दिखाने के लिए कि पौधों की एक विशेषताओं का अनुपात दूसरी विशेषताओं से कितना अलग है, उसने बड़ी सावधानी से उनकी गिनती की. मेंडेल की तरह, उसे भी अपनी खोज द्वारा प्राप्त अनुपात को समझने के लिए यह मानना पड़ा कि हर पौधे में दो तत्व हैं जो उसके भौतिक लक्षणों का नियंत्रण करते हैं. एक तत्व पराग में होता है और दूसरा बीजाणु में और ये दोनों मिलते हैं संयोग वश.

१९०० में ड व्रीज अपने वंशानुक्रम के सिद्धांत को प्रकाशित करने के लिये तैयार था.

दो और वनस्पति-शास्त्री भी वंशानुक्रम सिद्धांत प्रकाशित करने के लिये तैयार थे. ये ड व्रीज को नहीं जानते थे और एक दूसरे से भी अनजान थे. उनमें से एक जर्मनी का वनस्पति-शास्त्री था कार्ल एरिक कावरेंज (Karl Erich Correns १८६४-१९३३) और दूसरा ऑस्ट्रिया का एरिक शेरमेक फॉन जायज़ेनेक (Erich Tschermak von Seysenegg १८७१-१९६२).

हरेक वैज्ञानिक ने अपनी शोध प्रकाशित करने से पहले सोचा कि यह देखा जाय कि वैज्ञानिक पत्रिकाओं में इस विषय पर पहले क्या छप चुका है. वैज्ञानिकों के आश्चर्य का हम सिर्फ अनुमान ही लगा सकते हैं

जब उन्हें यह पता लगा कि उनके द्वारा प्रस्तावित वंशानुक्रम सिद्धांत मेंडेल ने ४०-साल पहले ही खोज निकाला था!

तीनों वैज्ञानिकों ने अपने शोधपत्र प्रकाशित किये और हरेक ने मेंडेल को पूरा श्रेय दिया. अब हम इसे **मेंडेल के वंशानुक्रम सिद्धांत** के नाम से जानते हैं और मेंडेल को इसके लिए ख्याति मिली -- परन्तु मृत्यु के बहुत समय बाद जब औरों ने उसके काम को ढूँढ निकाला!

३. फ्लेमिंग और गुण-सूत्र (क्रोमोसोम)

इस दौरान, पूरे १८०० के शतक में वैज्ञानिक पौधों और पशुओं के विभिन्न भागों का अध्ययन कर रहे थे. माइक्रोस्कोप द्वारा वे सूक्ष्म से सूक्ष्म विवरणों को देख रहे थे. उन्होंने जीव-जन्तुओं की संरचनाओं को, जो इतनी सूक्ष्म थीं कि उन्हें माइक्रोस्कोप के बिना देखा न जा सकता था, कोशिका (सैल) कहा.

कोशिकायें पशुओं की तुलना में पौधों में अधिक साफ़ दिखाई देती हैं. १८३८ में जर्मन वनस्पति-शास्त्री मैथिस जैकब श्ल्याडन (Matthias Jacob Schleiden १८०४-१८८१) ने घोषणा की कि पौधे पूर्णतः कोशिकाओं से बने हैं जो एक दूसरे से पतली दीवारों से अलग रहते हैं. उसने कहा कि ये कोशिकायें ही वनस्पति-जीवन का आधार हैं.
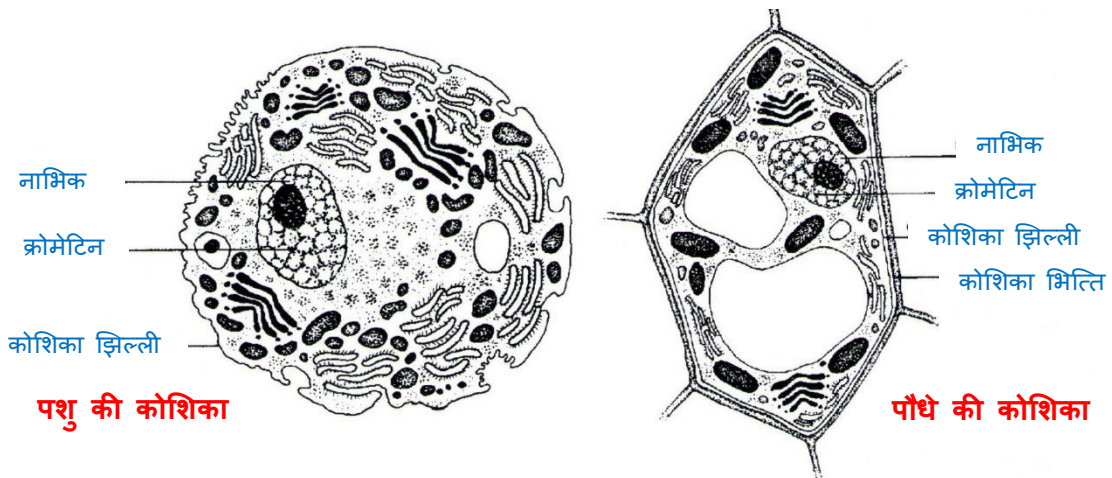
अगले साल, जर्मन वनस्पति-शास्त्री थिओडोर श्वाहन (Theodor Schwann १८१०-१८८२) ने इस विचार को और विकसित किया. उसका कहना था कि सब पशु और पौधे कोशिकाओं से बने होते हैं और पशुओं

में ये कोशिकायें बहुत पतली झिल्लियों द्वारा एक दूसरे से अलग होती हैं. श्ल्याडन और श्वाहन ने "जीवन का कोशिका सिद्धान्त (Cell Theory of Life)" का प्रचार किया जो वास्तव में सच निकला.

१८४५ में जर्मन वनस्पति-शास्त्री कार्ल वॉन ज़ीबोल्ड (Karl von Siebold १८०४-१८८५) ने कहा कि अति सूक्ष्म जन्तु (जिन्हें सिर्फ माइक्रोस्कोप से ही देखा जा सकता है) भी कोशिकाओं से बने होते हैं. बड़े जीव-जन्तु, जिन्हें हम अपनी आँखों से बिना किसी माइक्रोस्कोप की सहायता से देख सकते हैं, अलग अलग तरह की कोशिकाओं से मिलकर बनते हैं. इसे बहु-कोशकीय जीव (multicellular organism मल्टी-सेल्लुर ऑर्गेनिज्म) कहते हैं. जीव जितना बड़ा होगा उसमें उतनी ही अधिक कोशिकायें होंगी. बहु-कोशकीय जीव बड़े होने के लिये कोशिकाओं की संख्या बढ़ाते जाते हैं -- जो सिर्फ एक कोशिका से होता है. पशुओं और पौधों में पहली कोशिका अंडा-कोशिका होती है.

एक वयस्क मनुष्य में ५०-ट्रिलियन (५०,०००,०००,०००,०००) कोशिकायें होती हैं. परन्तु जीवन अकेले एक कोशिका से शुरू होता है. वह अकेली कोशिका दो-भागों में बटती है. दोनों हिस्से बड़े होते हैं और फिर हर हिस्सा दो-भागों में विभाजित होता है. एक अकेली कोशिका को ५०-ट्रिलियन (५०,०००,०००,०००,०००) कोशिकायें बनने में सिर्फ लगभग ४५-विभाजनों की आवश्यकता होती है!

कोशिकायें कैसे विभाजित होती हैं? विभाजन के दौरान कोशिकाओं के अंदर क्या हो रहा होता है?

तुम शायद सोच रहे होगे कि कोशिकायें पानी की बूँद जैसी हैं जो विभाजित हो कर दो बन जाती हैं. ऐसा नहीं है. माइक्रोस्कोप के नीचे कोशिका को देखने से पता चलेगा कि यह द्रव्य की बूँद नहीं है. इसके अंदर एक और नन्ही सी सरंचना (स्ट्रक्चर) है.

कोशिका-सिद्धांत के पूरी तरह विकसित होने से पहले, कुछ वैज्ञानिकों ने कोशिका के केन्द्र में झिल्ली के अंदर एक एक सरंचना (स्ट्रक्चर) देखी. १८३१ में स्कॉटलैंड के वनस्पति-शास्त्री रॉबर्ट ब्राउन (Robert Brown १७७३-१८५८) ने यह सरंचना बार-बार पायी. उसने सोचा कि यह सरंचना सभी कोशिकाओं में होती है. उसने इस छोटी सी सरंचना को नाभिक (न्यूक्लियस) कहा -- लैटिन शब्द "नन्ही गुठली" से क्योंकि यह सरंचना कोशिका के बड़े खोल के केन्द्र में छोटी गुठली जैसा है.

कोशिका-सिद्धांत के एक संस्थापक श्ल्याडन ने सोचा कि शायद नाभिक ही कोशिका-विभाजन (सैल-डिवीजन) की चाबी है. उसने सोचा नयी कोशिकायें नाभिक की सतह से ही निकलती हैं.

वॉन नैघली (जिसने मेंडेल की खोज के महत्व को न समझा) ने १८४६ में दर्शाया कि ऐसा नहीं है. उसने कहा नाभिक किसी तरह से कोशिका-विभाजन से जुड़ी होनी चाहिये. अगर एक कोशिका दो भागों में बटती है और एक भाग में नाभिक है और दूसरे में नहीं तो जिसमें नाभिक नहीं है वह भाग नष्ट हो जायगा. नाभिक वाला भाग बड़ा होता जायगा और अपने आपको विभाजित करता रहेगा.

परन्तु वैज्ञानिकों को यह कैसे पता लगेगा कि कोशिका-विभाजन के दौरान आखिर होता क्या है? कोशिका के अंदर की चीज पारदर्शक है. एक धुंधली सी छाया जैसा दिखता है. उसको बड़ा करके देखने से भी कुछ ज्यादा पता नहीं लगता. सिर्फ छाया और बड़ी हो जाती है, नया कुछ नहीं दिखता.

सन १८५० और उसके बाद वैज्ञानिक ऐसे रसायन बनाने में लग गये जो प्रकृति में नहीं पाये जाते. खास तौर पर ऐसे रंगीन रसायनों की आवश्यकता लगी जिनसे कपड़े चटकीले रंगों में रँगे जा सकें, जिनका रंग धुलने से न उतरे और धूप में न उड़े. कपड़ा रँगने वाली डाई एक नया बड़ा उद्योग बन गया.
कुछ जीव-वैज्ञानिकों (बायोलॉजिस्ट) को लगा क्यों न कोशिकाओं को भी रंग दिया जाय. अगर कोशिकाओं के अंदर अलग-अलग तरह के ढांचे (स्ट्रक्चर) मौजूद हैं तो हो सकता है उनकी रासायनिक बनावट भी अलग-अलग हो. हो सकता है कोई विशेष डाई कुछ ढांचों से मिल जाय और दूसरों से न मिले. इस तरह कोशिका के अंदर कुछ भाग चमकीले रंग के होंगे और कुछ नहीं. इस तरह माइक्रोस्कोप से कोशिका के अंदरूनी भाग का अध्ययन किया जा सकता है.

१८७० के दशक में जर्मनी के जीव-वैज्ञानिक वाल्थर फ्लेमिंग (Walther Fleming १८४३-१९०५) ने इस तरह डाई का प्रयोग किया. उसे एक ऐसी डाई मिली जिसे कोशिका की नाभिक के कुछ हिस्सों ने सोखा और बाकी हिस्सों पर उसका कोई असर न पड़ा. माइक्रोस्कोप द्वारा असर पड़ने वाले हिस्सों को देखा जा सका.

फ्लेमिंग ने नाभिक के अंदर के उस पदार्थ को जिसने डाई का रंग सोखा, क्रोमेटिन कहा. क्रोमेटिन का ग्रीक में अर्थ होता है रंग.

फिर फ्लेमिंग ने माइक्रोस्कोप द्वारा तेजी से बड़े होते हुए टिस्यू के एक हिस्से को देखना चाहा. चूंकि टिस्यू बड़ा हो रहा था, अधिकतर कोशिकायें कोशिका-विभाजन की विभिन्न स्थितियों में थीं. बिना डाई के यह सब देखना असम्भव था.

फ्लेमिंग ने टिस्यू को डाई से रंग कर माइक्रोस्कोप के नीचे रखा. परन्तु डाई ने कोशिका के अंदर के पदार्थ को दूषित कर कोशिका को ही मार डाला और कोशिका-विभाजन जारी न रह सका. परन्तु अलग-अलग कोशिकायें, कोशिका-विभाजन के दौरान अलग-अलग समय पर मरे. ऐसा लग रहा था जैसे स्थिर फोटों की फिल्म चल रही हो और फोटों को गड्ड-मड्ड कर दिया गया हो. अगर कोशिश की जाय तो उन्हें क्रम से लगा कर देखा जा सकता है कि क्या हो रहा है.

फ्लेमिंग ने बहुत ध्यानपूर्वक और बड़ी सावधानी से कोशिका-विभाजन के क्रम का १८८२ में एक पुस्तक के रूप में प्रकाशन किया.

जैसे कोशिका-विभाजन का सिलसिला शुरू होता है, क्रोमेटिन नाभिक में बारीख सेंवइयों के टुकड़ों जैसे नन्ही-नन्ही सलाखों की तरह इकट्ठे हो जाते हैं. फ्लेमिंग ने हर सलाख को क्रोमोसोम कहा -- ग्रीक में इसका अर्थ है रंगीन वस्तु. क्रोमोसोम का वास्तव में कोइ रंग नहीं होता. परन्तु डाई का प्रयोग करने से वे रंगीन दिखाई देते हैं.

जैसे-जैसे कोशिकायें विभाजित होती हैं, हर क्रोमोसोम अपने जैसा एक और पैदा कर देता है. इस तरह से एक क्रोमोसोम के दो बन जाते हैं. फिर नाभिक की झिल्ली पिघल जाती है. सारे डबल क्रोमोसोम, कोशिका के केन्द्र पर इकट्ठे होते हैं और फिर एक दुसरे से दूर हो जाते हैं. हर डबल क्रोमोसोम का एक क्रोमोसोम कोशिका के एक तरफ पहुँच जाता है और दूसरा उसके विपरीत दिशा में. इस तरह
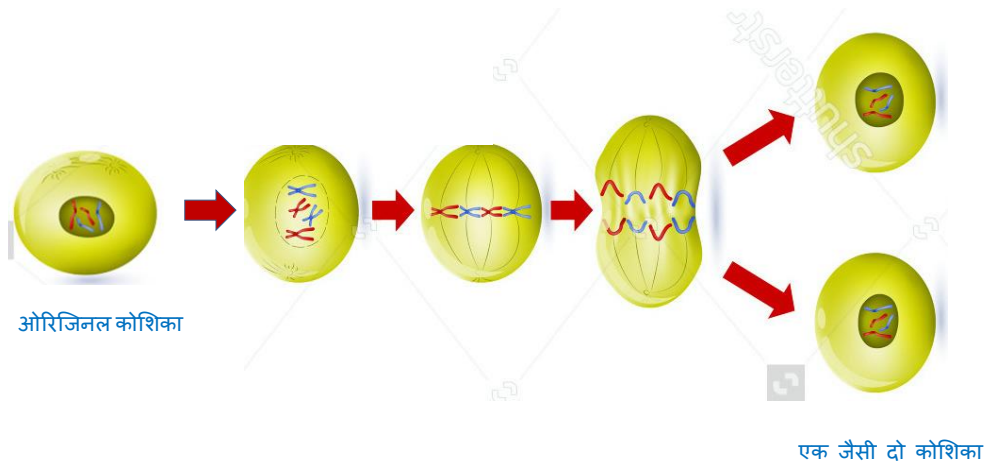
मिटोसिस -- क्रोमोसोम के बनने और विभाजन की प्रक्रिया

क्रोमोसोम का पूरा सेट कोशिका के दोनों सिरों पर इकट्ठा हो जाता है. फिर हर सेट के ऊपर झिल्ली बननी शुरू होती है. इस तरह कोशिका के दोनों सिरों पर नया नाभिक बनता है. फिर कोशिका बीच से टूट कर दो भागों में बट जाती है और इस तरह दो कोशिकायें बनती हैं अपने-अपने नाभिक सहित.

और वैज्ञानिकों ने फ्लेमिंग के शोध कार्य को आगे बढ़ाया. उनमें से एक था बैल्जियम का जीव-वैज्ञानिक -- एडुआर्ड वॉन बैनेडन (Edouard von Beneden १८४६-१९१०). १८८७ में बैनेडन ने दर्शाया कि किसी भी पौधे या पशु में हमेशा एक बराबर क्रोमोसोम होते हैं. कोशिका-विभाजन के दौरान ये दुगने हो जाते हैं और इस तरह कोशिका-विभाजन पर हर पुत्री-कोशिका में उतने ही क्रोमोसोम होते हैं जितने पितृ-कोशिका में थे.

उदाहरण के तौर पर, हम जानते हैं कि मानवीय कोशिका में ४६ क्रोमोसोम होते हैं. जब यह कोशिका विभाजित होती है हर क्रोमोसोम बिल्कुल अपने जैसा एक और क्रोमोसोम बनाता है और कुल ९२

क्रोमोसोम हो जाते हैं. इनमें से ४६ क्रोमोसोम कोशिका के एक तरफ पहुँच जाते हैं और बाकी ४६ दूसरी तरफ. अंत में दो कोशिकायें बन जाती हैं -- ४६ क्रोमसोम हर कोशिका में.

जब लिंग-कोशिकायें (सेक्स-सैल्स) बनती हैं, तो हर कोशिका को क्रोमोसोम का हाइफा-सेट (Haifa Set) मिलता है. इस प्रक्रिया को मिओसिस और जो कोशिका-विभाजन होता है उसे रिडक्शन-विभाजन कहते हैं. इसका अर्थ है पौधों और पशुओं के शुक्राणु एवं अंडा कोशिकाओं में क्रोमोसोम की संख्या सामान्य से आधी होती है. मानवीय कोशिकाओं में यूँ तो ४६-क्रोमोसोम होते हैं, परन्तु शुक्राणु एवं अंडा कोशिकाओं में २३-२३ क्रोमोसोम ही होंगे.
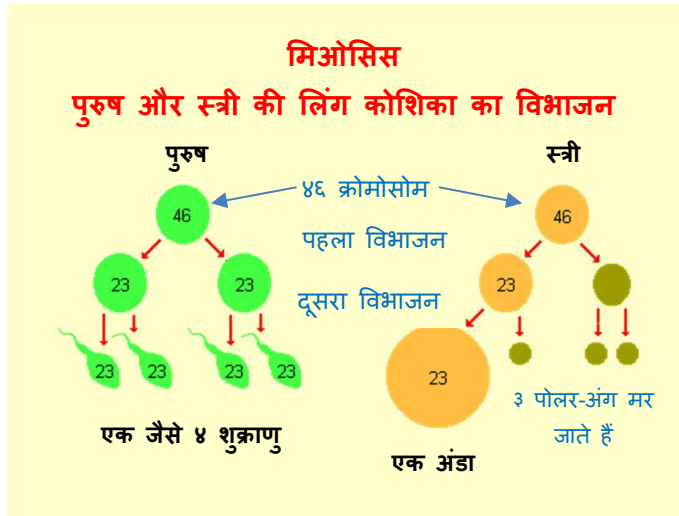
जब पुरुष की शुक्राणु-कोशिका स्त्री की अंडा-कोशिका से मिलती है तो एक के २३-क्रोमोसोम दूसरे के २३-क्रोमोसोम से मिल जाते हैं. परिणाम होता है -- एक निषेचित-कोशिका (फर्टिलाइज्ड सैल) का जन्म जिसमें ४६-क्रोमोसोम होते हैं -- आधे पिता से आधे माता से. जैसे जैसे निषेचित-कोशिका लगातार विभाजित होती है हर नयी कोशिका में ४६-क्रोमोसोम होते जाते हैं -- आधे पिता से और आधे माता से.

४. मॉर्गन और फल-मक्खियां (फ्रूट-फ्लाइज)

जीव-वैज्ञानिकों ने फ्लेमिंग और बैनेडन की शोध का महत्व नहीं समझा, जब तक कि सन १९०० में ड व्रीज, कावरेंज और शेरमेक फॉन जायज़ेनेक ने मेंडेल के वंशानुक्रम सिद्धांत को फिर से ढूढ़ निकाला. उन्होंने पाया कि क्रोमोसोम मेंडेल के सिद्धांत समर्थन करते हैं.

इस बात पर सबसे पहले अमेरिकी जीव-वैज्ञानिक वाल्टर स्टेनबरो सटन (Walter Stanborough Sutton १८७७-१९१६) ने ध्यान आकर्षित किया. १९०२ में जब वह केवल २५-साल का था, उसने एक शोध पत्र प्रकाशित किया जिसमें उसने दिखाया कि सारे क्रोमोसोम जोड़ों में पाये जाते हैं और उनकी संरचना एक-दूसरे से मिलती-जुलती होती है. इसलिए हमें यह सोचने के बजाय कि मानव कोशिकाओं में ४६-क्रोमोसोम होते हैं, हमें यह सोचना चाहिये कि उनमें क्रोमोसोम के २३-जोड़े होते हैं.

१९०३ में उसने दिखाया कि शुक्राणु और अंडा कोशिकाओं में हर क्रोमोसोम जोड़े का एक भाग होता है. उनके २३-क्रोमोसोम एक तरह से आधे-सैट जैसे हैं. कल्पना कीजिये कि हर कोशिका में वर्ण माला के कैपिटल और स्माल अक्षरों के जोड़े हैं (Aa Bb Cc Dd .....) जिन्हें हम क्रोमोसोम के जोड़े समझ सकते हैं. लिंग कोशिकाओं में भी वर्णमाला के यही अक्षर होंगे परन्तु उनमें या तो कैपिटल अक्षर (A B C D....) होगा या स्माल अक्षर (a b c d ....).

पुरुष कोशिका के ४६ क्रोमोसोम
(२२-जोड़े + २ लिंग क्रोमोसोम X और Y)

स्त्री कोशिका के ४६ क्रोमोसोम
(२२-जोड़े + २ लिंग क्रोमोसोम X और X)
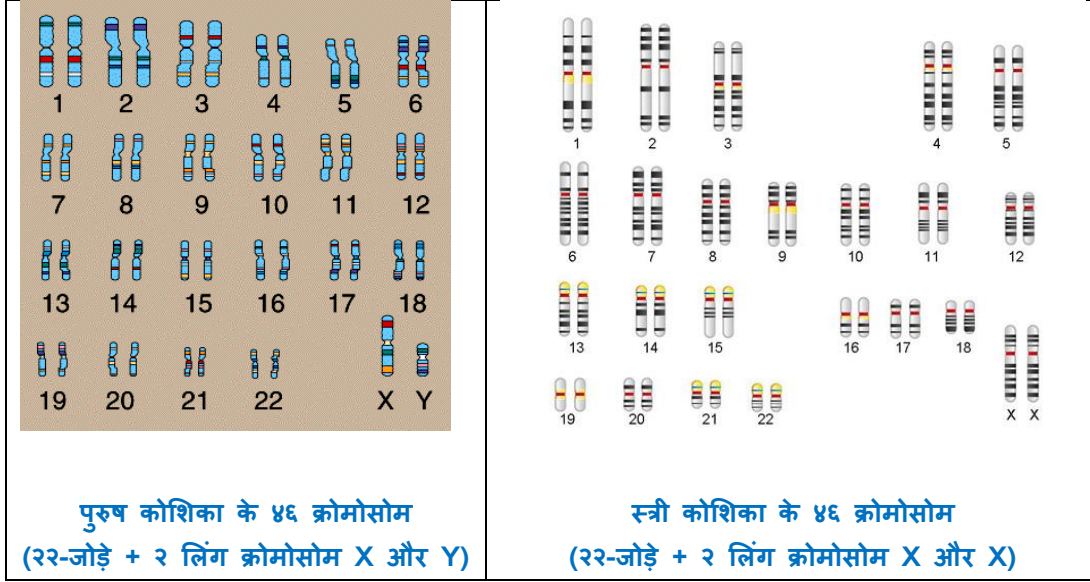
निषेचित (फर्टिलाइज्ड) कोशिकाओं में क्रोमोसोम के २३-जोड़े होते हैं. हर जोड़े का एक भाग पिता से मिलता है और दूसरा माता से.
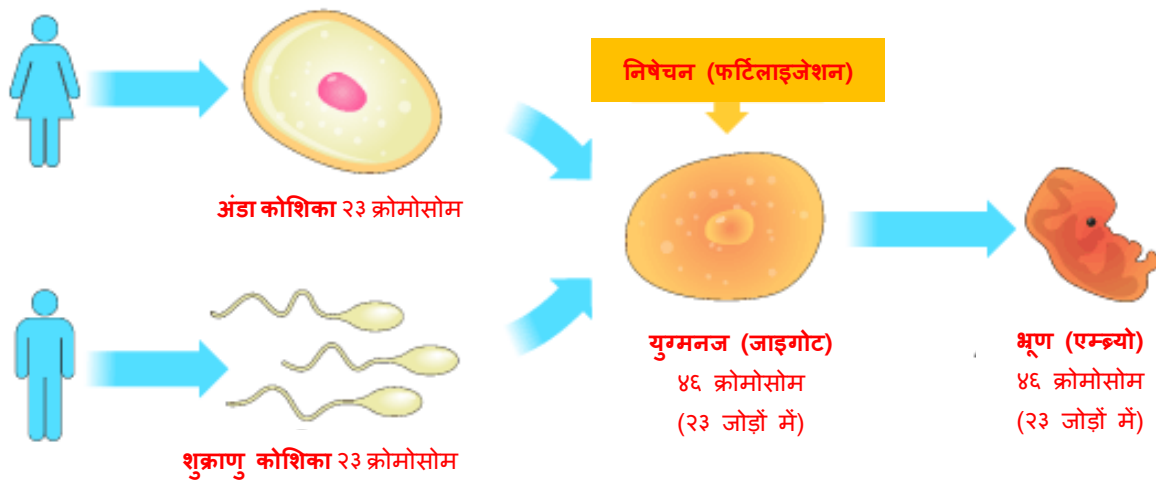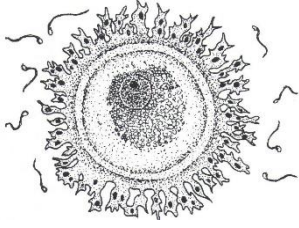
मानवीय लिंग कोशिका (सेक्स सैल)

चलो फिर से मेंडेल के मटर के पौधों का उदाहरण लें.

मानलीजिये मटर के पौधों में एक क्रोमोसोम है जो उनके लम्बे-पन और बौने-पन को निर्धारित करता है. यह क्रोमोसोम T या s हो सकता है. इस क्रोमोसोम के जोड़े का पार्टनर भी होगा जो लम्बा-पन या ठिगना-पन निर्धारित करेगा. यह भी T या s होगा. परिणाम स्वरूप क्रोमोसोम के जोड़े TT, Ts, sT, या ss हो सकते हैं.

TT पौधे के शुक्राणु-कोशिका में हमेशा क्रोमोसोम जोड़े का एक भाग होगा और वह है T. ss पौधे के शुक्राणु-कोशिका में हमेशा क्रोमोसोम जोड़े का एक भाग होगा और वह है s. परन्तु sT या Ts पौधों में आधे शुक्राणु-कोशिकाओं को s और दूसरे आधों को T क्रोमोसोम मिलेंगे.

ऐसा ही अंडा-कोशिकाओं में होगा. अगर अब आप यह कल्पना करो कि शुक्राणु-कोशिका और अंडा-कोशिका मिलकर बीज बनायें, याद रहे कि T प्रबल है s की तुलना में, तो मेंडेल का सिद्धांत सही साबित होगा.

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि क्रोमोसोम के बारे में कुछ भी जाने बिना मेंडेल ने सिर्फ मटर के पौधों के परागण (पॉलिनेशन) के परिणाम से यह बता दिया था कि क्रोमोसोम आखिर करते क्या हैं?

फिर भी कुछ पहेलियों को सुलझाना अभी बाकी था. एक बात तो यह कि क्रोमोसोमों की संख्या काफी नहीं. मानवीय कोशिकाओं में क्रोमोसोमों के केवल २३-जोड़े हैं. और अगर हर जोड़ा किसी एक लक्षण (विशेषता) को नियंत्रित करता है तो इस तरह तो केवल २३-ही विशेषताऐं हुईं. यह तो अविश्वसनीय है. मनुष्य २३ से अधिक शारीरिक विशेषताऐं विरासत में पाते हैं.
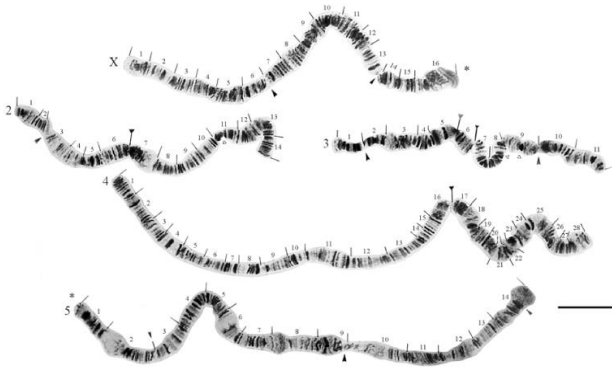
एक कीड़े का क्रोमोसोम.
हर क्रोमोसोम की लम्बाई पर मौजूद हैं हजारों जीन.

इस पहेली का हल वास्तव में बहुत आसान निकला. वैज्ञानिकों ने सोचा -- हर क्रोमोसोम का एक छोटा सा भाग किसी खास लक्षण (विशेषता) को नियंत्रित करता होगा. ये छोटे-छोटे भाग क्रोमोसोम रूपी धागे में मोती की तरह होंगे. हर क्रोमोसोम में एक दर्जन, सैंकड़ों या फिर हजारों ऐसे छोटे-छोटे भाग पाए जा सकते हैं.

१९०९ में डैनिश वनस्पति वैज्ञानिक विलिहेल्म लडविग जोहन्सन (Wilhelm Ludvig Johannsen १८५७-१९२७) ने सुझाव दिया कि क्रोमोसोम का हर हिस्सा जो किसी शारीरिक विशेषता को नियंत्रित करता है को जीन कहा जाय. जीन का अर्थ ग्रीक में है -- जीवन देने वाला. उसका सुझाव मान लिया गया और तब से सब क्रोमोसोम को जीन की श्रृंखला (रस्सी) के रूप में जानने लगे.

इसके अलावा और भी प्रश्न थे -- कुछ कठिन. जैसे कि कुछ बच्चे पुलिंग और कुछ स्त्रीलिंग क्यों होते हैं? मानवों में (तथा बहुत सारे जानवरों में) लगभग आधे लड़के और आधी लड़कियाँ होती हैं. पुरुषत्व और नारीत्व एक प्रमुख विशेषता है परन्तु यह मेंडेल के सिद्धांत के अनुसार नहीं चलती. मेंडेल का सिद्धांत तो कहता है कि नयी पीढ़ी में या तो पुरानी के सारे गुण हों या बिलकुल नहीं या फिर इनका अनुपात ३:१ हो. यह सिद्धांत नहीं कहता कि यह आधा-आधा हो जैसे कि पुरुषत्व और नारीत्व में होता है.

यह उन समस्याओं में से एक थी जिसमें अमरीकी जीव-वैज्ञानिक थॉमस हंट मॉर्गन (Thomas Morgan Hunt १८६६-१९४५) ने रुचि ली. इसकी जाँच-पड़ताल के लिये उसने १९०८ में एक छोटे कीड़े फल-मख्खियों (फ्रूट-फ्लाईज) का प्रयोग किया (फ्रूट-फ्लाई -- फलों के ऊपर भिन-भिनाने वाले फुनगों को कहते हैं). फल-मख्खी (फ्रूट-फ्लाई) का वैज्ञानिक नाम है ड्रॉसोफिला (drosophila). इनके इस्तेमाल के कई फायदे हैं -- ये शीघ्र ही बहुत सारे बच्चे पैदा कर सकते हैं, ये शरीर में छोटे होते हैं इसलिए इन्हें ज्यादा जगह और खाने की भी जरूरत नहीं होती, और सबसे बड़ा फायदा है कि इनकी कोशिकाओं में क्रोमोसोम के सिर्फ ४-जोड़े ही होते हैं.

थॉमस हंट मॉर्गन

अधिकतर फल-मख्खियों (फ्रूट-फ्लाईज) की ऑंखें लाल होती हैं. पर मॉर्गन को सफेद आँखों वाली फल-मख्खियां भी मिलीं. जब मॉर्गन ने सफेद आँखों वाली नर फल-मख्खियों को लाल आँखों वाली नारी फल-मख्खियों के साथ बोतल में रखा तो सारे बच्चे लाल-रंग की आँखों वाले पैदा हुए. अगर लाल-आँखों का गुण सफेद आँखों से प्रबल है तो मेंडेल के सिद्धांतानुसार ऐसे ही परिणाम की आशा थी.
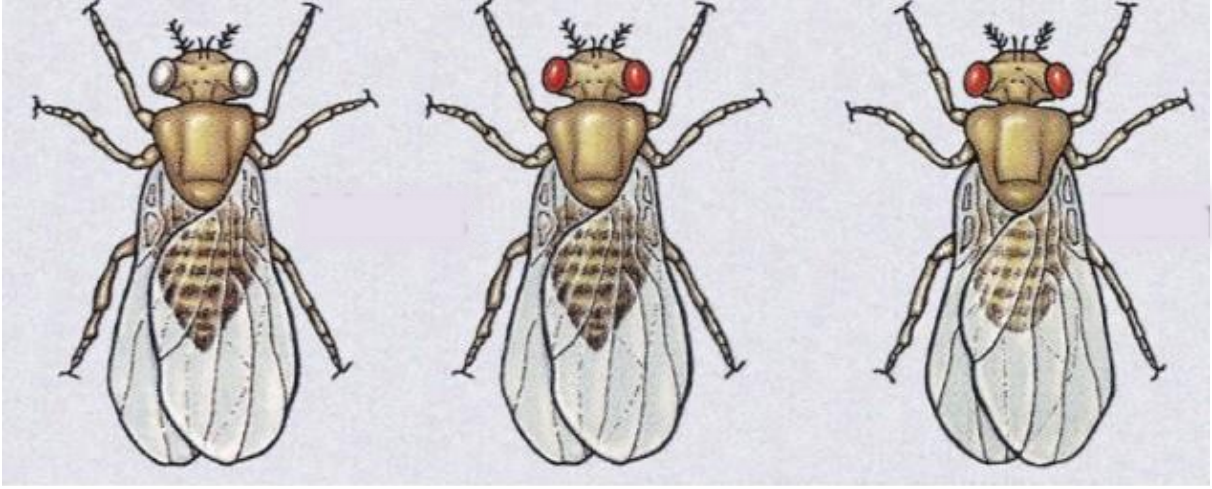
सफ़ेद आँखों वाली नर फ्रूट-फ्लाई लाल आँखों वाली नर फ्रूट-फ्लाई लाल आँखों वाली नारी फ्रूट-फ्लाई

जब मॉर्गन ने लाल-आँखों वाले पैदा हुए बच्चों को बोतल में रखा तो लाल और सफेद आँखों वाले बच्चे ३:१ के अनुपात में पैदा हुए. मेंडेल के सिद्धांत ने भी यही भविष्यवाणी की थी. लेकिन एक आश्चर्यजनक बात हुई. सफ़ेद-आँखों वाली सब की सब फल-मख्खियां पुलिंग थीं. ऐसा क्यों?

मॉर्गन ने फल-मख्खियों के क्रोमोसोमों को ध्यान से देखा. उसने पाया कि नारी फल-मख्खियों में क्रोमोसोम के चार एक दम परफैक्ट जोड़े थे. उनमें से एक जोड़े को मॉर्गन ने X-क्रोमोसोम कहा. नर फल-मख्खियों में तीन-परफैक्ट जोड़े थे, और केवल एक X-क्रोमोसोम था जिसका कोई पार्टनर न था.

इसका मतलब है कि जब नारी फल-मख्खी अंडा-कोशिका बनाती है तो हर अंडा-कोशिका में हर क्रोमोसोम के जोड़े होंगे और हरेक में एक X-क्रोमोसोम भी होगा.

जब नर फल-मख्खी शुक्राणु कोशिका बनायेगा तो हर कोशिका में तीन क्रोमोसोम के जोड़े होंगे, परन्तु X-क्रोमोसोम का कोई पार्टनर न होगा. इसका अर्थ है कि आधे शुक्राणु कोशिकाओं में X-क्रोमोसोम होंगे आधों में नहीं.
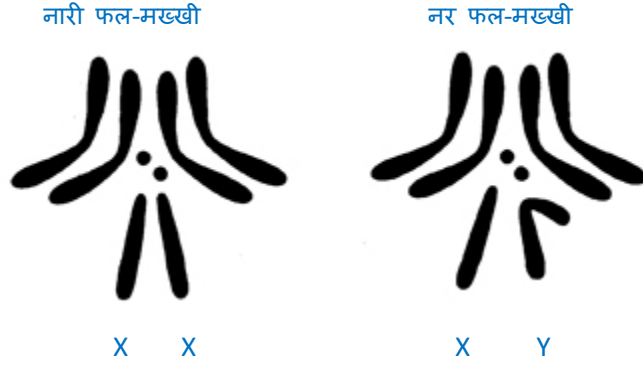
अगर फल-मख्खी का अंडा कोशिका शुक्राणु कोशिका जिसमें X-क्रोमोसोम है से जुड़े तो निषेचित कोशिका में २-X-क्रोमोसोम होंगे और वह एक नारी फल-मख्खी बनेगा. अगर एक अंडा कोशिका ऐसे शुक्राणु कोशिका से जुड़े जिसमें X-क्रोमोसोम न हो तो निषेचित कोशिका में केवल एक X-क्रोमोसोम होगा और वह नर फल-मख्खी बनेगा.

चूंकि दोनों तरह की शुक्राणु कोशिकाएं बराबर संख्या में होती हैं, आधी निषेचित कोशिकायें नारी बनेंगी और आधी नर.

ऐसा ही मनुष्यों में भी होता है. स्त्रियों की हर कोशिका में क्रोमोसोम के २३-परफैक्ट जोड़े होते हैं. पुरुषों की हर कोशिका में क्रोमोसोम के २२-परफैक्ट जोड़े होते हैं. और होता है एक X-क्रोमोसोम और उसका छोटा-सा पार्टनर जिसे Y-क्रोमोसोम कहते हैं.

परन्तु यह इस बात को कैसे समझाये कि सफ़ेद-आँखों वाली सब की सब फल-मख्खियां पुलिंग थीं?
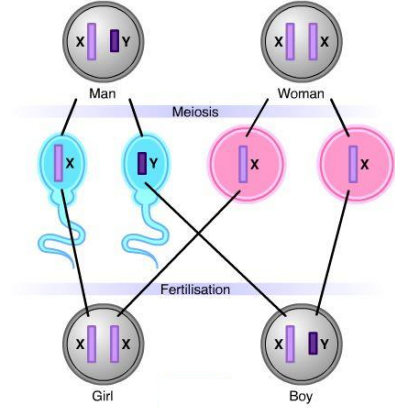
फल-मख्खियों की आँखों के रंग को नियंत्रित करने वाला जीन X-क्रोमोसोम पर होता है. उस नारी फल-मख्खी की लाल आँखें ही होंगी जिसके दोनों X-क्रोमोसोम पर लाल-आँखों के जीन (RR) हैं. अगर उसके एक क्रोमोसोम पर सफ़ेद-आँखों के जीन हैं (RW या WR) तो भी उसकी आँखें लाल ही होंगी क्योंकि लाल-आँखें सफ़ेद-आँखों से प्रबल हैं. नारी फल-मख्खियों की आँखें सफ़ेद तभी होंगी जब दोनों X-क्रोमोसोम पर सफ़ेद आँख के जीन (WW) हों. परन्तु सफ़ेद आँख के जीन दुर्लभ होते हैं. उनका दोनों X-क्रोमोसोम पर होना तो और भी मुश्किल है. यही कारण है कि सफ़ेद आँखों वाली नारी फल-मख्खियां बहुत मुश्किल से मिलती हैं.

नर फल-मख्खी में लाल-आँख का जीन (RO) अगर अकेले X-क्रोमोसोम पर पर हो तो उसकी आँखें लाल रंग होंगी. अगर नर फल-मख्खी में सफ़ेद आँख का जीन (WO) X-क्रोमोसोम पर हो तो उसकी आँखें सफ़ेद होंगी. सफ़ेद आँख का एक ही जीन काफी है क्योंकि नर फल-मख्खी में दूसरा X-क्रोमोसोम होता ही नहीं जिस पर लाल आँखों का प्रबल जीन हो.

मानलो एक सफ़ेद-आँख वाली नर फल-मख्खी (WO) का मिलन एक लाल-आँख वाली नारी फल-मख्खी (RR) से हो तो अंडा कोशिका R होगा परन्तु शुक्राणु कोशिका दो तरह की होंगी -- W और O. आधे

निषेचित अंडा कोशिकाओं को W वाला X-क्रोमोसोम मिलेगा और वे WR बनेंगे. वे सब स्त्रीलिंग होंगे और उनकी आँखें लाल होंगी. दूसरे आधे निषेचित अंडा कोशिकाओं को कोई X-क्रोमोसोम नहीं मिलेगा और वे RO होंगे. ये सब पुलिंग होंगे और इनकी आँखें लाल होंगी.
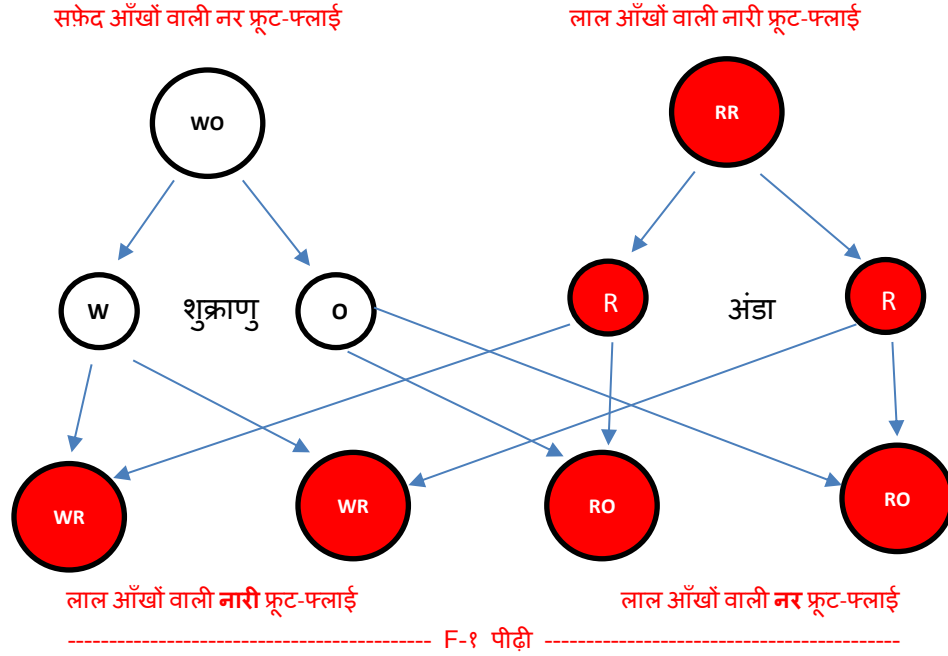
सफ़ेद आँखों वाली नर और लाल आँखों वाली नारी फ्रूट-फ्लाई का सम्भोग

अगर इस तरह पैदा हुए लाल-आँखों वाली नारी फल-मक्खियों (WR) और नर फल-मक्खियों (RO) का आपस में मिलन हो तो क्या होगा?

आधी अंडा कोशिकाएं R होंगी और आधी W. उनमें से किसी एक को भी शुक्राणु कोशिका से X-क्रोमोसोम मिल सकता है और इस तरह स्त्रीलिंग की फल-मक्खियां पैदा हो सकती हैं. इस तरह आधी नारी फल-मक्खियां RW होंगी और आधी RR और इन सबकी आँखें लाल रंग की होंगी.

दूसरी ओर, अंडा कोशिकाओं को शुक्राणु से कोई X-क्रोमोसोम न मिलें तो वे सब नर फल-मक्खियों को जन्म देंगी. इस दशा में आधी नर फल-मक्खियां RO होंगी और उनकी आँखें लाल रंग की होंगी और आधी नर फल-मक्खियां WO होंगी और उनकी आँखें सफ़ेद होंगी. इसका अर्थ है, सब बच्चों के एक चौथाई (आधी नर फल-मक्खियों का आधा) फल-मक्खियों की आँखें सफ़ेद होंगी और वे सब पुलिंग होंगी -- मॉर्गन ने बिल्कुल ऐसा ही पाया.
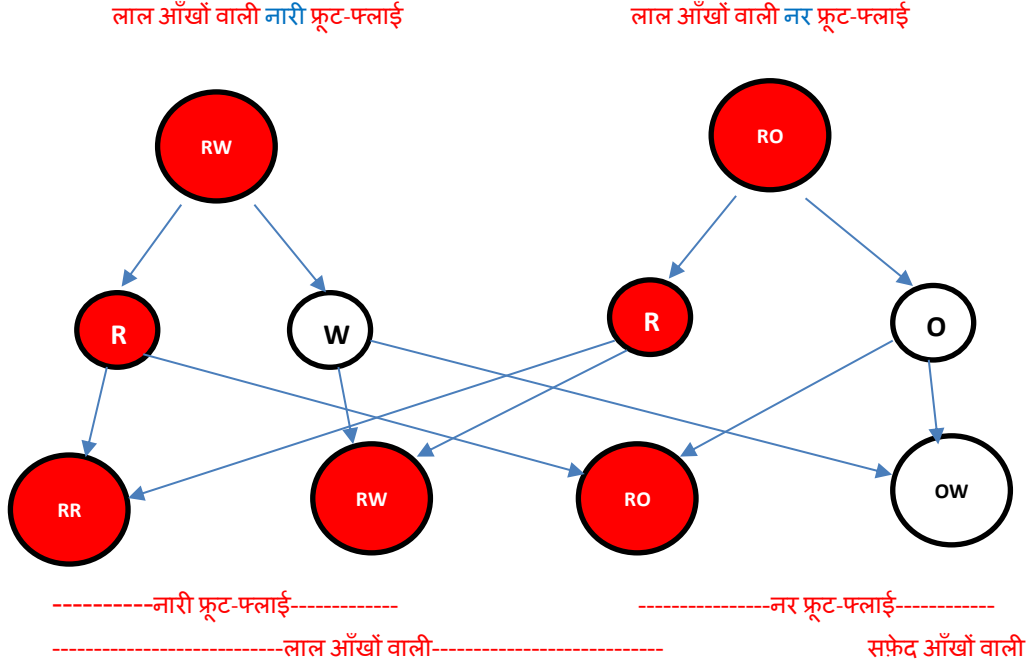
F-१ पीढ़ी के सदस्यों में सम्भोग

मॉर्गन ने फल-मख्खियों के आँखों के रंग की विशेषता को उनके लिंग से जोड़ा. इस प्रकार का लिंग-संबंध मानवों में भी होता है. उदाहरण के तौर पर मानवों में रंग-बोध की अक्षमता (कलर ब्लाइंडनेस) लिंग से जुड़ी है. लगभग हमेशा रंग-बोध की अक्षमता (कलर ब्लाइंडनेस) आदमियों होती है. शायद ही कोइ स्त्री होगी जो रंग-बोध में अक्षम (कलर ब्लाइंड) हो. स्त्रियों में इस विशेषता के जीन होते हैं जो वे अपने बेटों को दे सकती हैं, बेटियों को नहीं.

इस तरह के और भी कई संबंध है. जब भी एक क्रोमोसोम माता-पिता से बच्चों को ट्रांसफर होता है, उन्हें एक पूरी जीन श्रंखला मिल जाती है. इस तरह उन जीनों द्वारा नियंत्रित सभी विशेषतायें बच्चों को मिल जाती हैं.

अतः अगर फल-मख्खियों की पंखड़ियों और टांगों की विशेषतायें एक ही क्रोमोसोम पर हों तो उनका वंशानुक्रम भी एक साथ ही होगा. फल-मख्खियों के बच्चों को या तो दोनों ही विशेषतायें मिलेंगी या एक भी नहीं.

मॉर्गन यह दर्शाने में सफल हुआ कि वास्तव में फल-मख्खियों में ऐसा ही होता है. और १९१० तक सटन का सुझाव कि क्रोमोसोम मेंडेल के कहे अनुसार ही व्यवहार करते हैं सिद्ध हुआ. (मॉर्गन को १९३३ में उनकी शोध के लिए नोबेल पुरुस्कार से सम्मानित किया गया)

फिर भी, ये संबंध इतने परफेक्ट नहीं हैं. ऐसा हो सकता है कि, फल-मख्खियों की विशेषता A और B पीढ़ी दर पीढ़ी एक साथ वंशानुक्रमित होती रहे और ऐसा लगे कि दोनों विशेषतायें एक ही क्रोमोसोम पर हैं. फिर अचानक कुछ गड़बड़ हो जाय -- जैसे कि कुछ फल-मख्खियों को विरासत में विशेषता A मिले पर B न मिले या फिर उसका उल्टा. इस तरह की फल-मख्खियों से उतपन्न बच्चों में A-B सम्बन्ध भी टूट जायगा.

मॉर्गन समझ गया कि आखिर हो क्या रहा है. क्रोमोसोम कोशिका विभाजन के समय परेड कर रहे सिपाहियों की तरह पंक्तियों में खड़े नहीं रहते, बल्कि सेंवई की तरह एक दूसरे में उलझे रहते हैं. एक जोड़े के क्रोमोसोम एक दूसरे में गुथे रहते हैं और कभी-कभी तो एक दूसरे से अपने कुछ हिस्से बाँट भी लेते हैं. इसे क्रॉसिंग-ओवर कहते हैं.
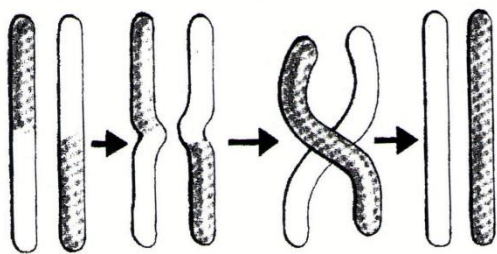
क्रोमोसोमों का क्रॉसओवर

हो सकता है B विशेषता को नियंत्रण करने वाले जीन का एक हिस्सा जोड़े के दूसरे सदस्य से जुड़ जाय. या फिर दूसरे क्रोमोसोम के बराबर का हिस्सा पहले से जुड़ जाय. इस तरह अब वह विभिन्न जीन बन जायेगा और सामान्य से अलग तरह के लक्षण दर्शायेगा.
इस तरह अंडा कोशिका और शुक्राणु कोशिका को लक्षण-A का जीन मिलता है परन्तु लक्षण-B अपने सामान्य रूप से थोड़ा अलग होगा.

१९११ में मॉर्गन ने अपने २०-साल के विद्यार्थी अल्फ्रेड हैनरी स्टुर्टवेन्ट (Alfred Henry Sturtevant १८९१-१९७०) से क्रोमोसोम के क्रॉसिंग-ओवर की चर्चा की. स्टुर्टवेन्ट को एक रोमांचक विचार आया. अगर एक क्रोमोसोम पर दो जीन, जो एक दूसरे से काफी दूर हों तो वे क्रॉसओवर के समय अलग हो जायेंगे. ऐसा क्रोमोसोम पर विभाजन रेखा कहीं भी हो, संभव है. इसके विपरीत, दो पास वाले जीन, क्रॉसओवर के समय शायद ही कभी अलग हों. विभाजन रेखा को उनके बीच होना पड़ेगा और उसके लिये इतनी जगह होगी ही कहाँ.

इसलिये, अगर किसी को यह अध्ययन करना हो कि ऐसे कौनसे लक्षण हैं जिनका सम्बन्ध एक दूसरे जुड़ा हुआ है तो हमें यह देखना होगा कि उनके जीन्स क्रोमोसोम पर एक दूसरे से कितनी दूर हैं.

अलग-अलग लक्षणों के जीन्स की दूरी पर शोध कार्य होने लगा. ऐसा भी हो सकता है कि दो जीन, क्रोमोसोम के विपरीत छोरों पर हों. तीसरा जीन इन दोनों के बीच में परन्तु दूसरे जीन के ज्यादा करीब हो. चौथा जीन, पहले के नजदीक हो. और इस तरह.... इसी तरह अन्य जीन्स....

इस तरह हम एक क्रोमोसोम का नक्शा बना सकते हैं जिस पर हमें जीन्स की स्थिति मालूम होगी और यह भी मालूम होगा कि कौनसा जीन किस लक्षण को नियंत्रित करता है. १९१३ में जब वह केवल २२-साल था, स्टुर्टवेन्ट ने एक शोध पत्र प्रकाशित किया जिसमें उसने अपने रोमांचक विचार का वर्णन किया. चार साल बाद उसने और भी अच्छे क्रोमोसोम के नक्शे बनाये.

उत्परिवर्ती (म्यूटैंट) फल-मख्खी

साधारण फल-मख्खी
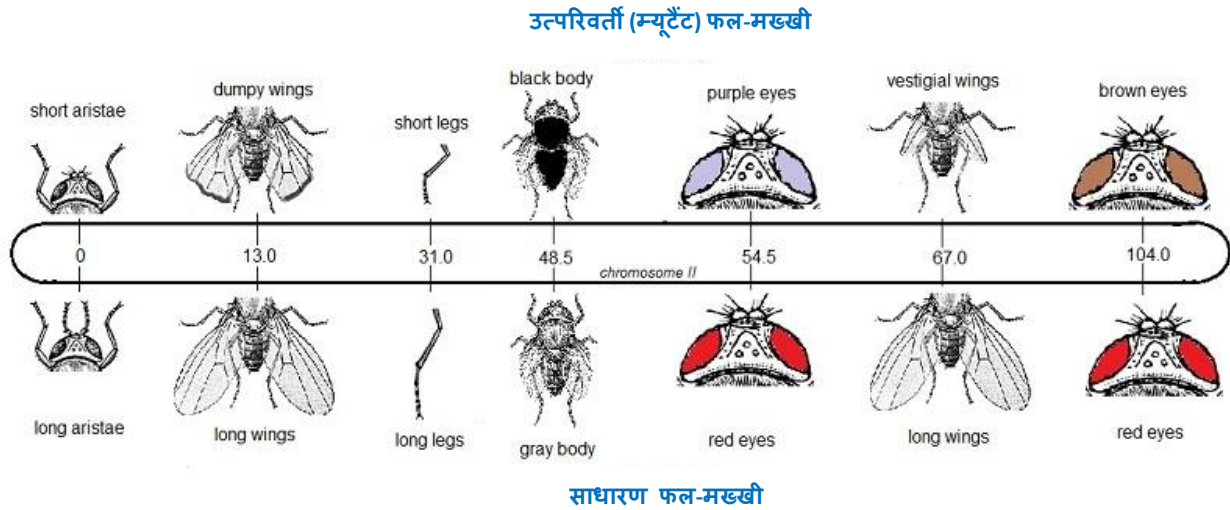
फल-मख्खी के एक क्रोमोसोम पर विभिन्न जीनों की स्थिति का सरल नक्शा

१९५१ तक उसने फल-मख्खी के चारों क्रोमोसोम के जोड़ों का नक्शा बनाया लिया जिन पर हर जीन की स्थिति दिखाई गयी.

५. म्यूलर और X-रे (एक्स-रे)

दोनों, लाल-आँखों और सफ़ेद-आँखों वाले जीन एक क्रोमोसोम पर एक ही जगह क्यों होने चाहिये -- क्रोमोसोम-जोड़े के एक भाग पर लाल और दूसरे पर सफ़ेद. आखिर, लाल रंग की आँखें ही सामान्य रूप में पायी जाती हैं. शायद प्रारम्भ में यही एक जीन होगा और कोशिका-विभाजन के समय और लाल-आँखों के जीन बने होंगे. फिर यह असमान्य सफेद-आँखों का जीन कहाँ से आया?

असली बात तो यह है कि, जैसे ड व्रीज दिखाया था, जीन का उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) हो सकता है.

ड व्रीज ने तो केवल पौधों में उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) का अध्ययन किया था. तो क्या जानवरों में भी उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) होता है? निश्चित रूप से घरेलू जानवरों में उत्परिवर्तन की खबरें मिली हैं, जैसे

कि छोटी-टांगों वाली भेड़ें. परन्तु वैज्ञानिक चाहते थे कि वे उत्परिवर्तन का अध्ययन अपनी प्रयोगशाला में कर सकें न कि किसानों और चरवाहों की रिपोर्टों पर आधारित रहें.

मॉर्गन ने अपने फल-मक्खियों के प्रयोगों में कभी-कभी उत्परिवर्तन होते देखा. उदाहरण के तौर पर, वह लाल-आँखों वाली फल-मक्खियों से अपना प्रयोग शुरू करता है. उनका प्रजनन-सत्य (ब्रेड-ट्रू) होता है और सब बच्चे लाल-आँखों वाले पैदा होते हैं. और उनके बच्चे भी लाल-आंखों वाले पैदा होते हैं.

फिर अचानक एक सफ़ेद-आँखों वाली फल-मख्खी पैदा हो जाती है. ऐसा क्यों हुआ?

हरमन जॉसेफ म्यूलर

मॉर्गन का एक और विद्यार्थी था, हरमन जॉसेफ म्यूलर (Hermann Joseph Muller १८९०-१९६७) जिसकी उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) की समस्या के अध्ययन में विशेष रुचि थी. उसका सोचना था कि हर जीन परमाणुओं की एक जटिल व्यवस्था से बना है. कोशिका-विभाजन के समय हर जीन को हर क्रोमोसोम पर बिल्कुल अपने जैसा दूसरा जीन बनाना होता है जिसमें परमाणुओं की व्यवस्था बिल्कुल पहले जैसी हो.

ज्यादातर तो सब ठीक ही होता है परन्तु यह सोचना बिल्कुल स्वाभाविक है कि कभी कबाज गड़बड़ हो जाती होगी. कुछ परमाणु अपनी ठीक जगह से हटकर कहीं और पहुँच जाते होंगे और इस तरह बना जीन उस तरह काम नहीं करेगा जैसा उसे करना चाहिये. वह एक अलग ही तरह का जीन होगा और इस कारण आंखों का रंग या पंखों की आकृति सामान्य से अलग होगी.

अतः जो चीज परमाणुओं को अपनी जगह पर रहने में मुश्किल पैदा करे या उन्हें अपनी जगह से हिलाकर कहीं और भेजने में आसानी पैदा करे तो उससे उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) की सम्भावना बढ़ जायगी. चूंकि परमाणुओं में ऊर्जा होती है इसलिये वे कंपित रहते हैं, थर-थराते रहते हैं. तापमान जितना अधिक होगा, उतनी ही अधिक होगी ऊर्जा उनमें और उतनी ही तेजी से वे हिलेंगे.

म्यूलर का तर्क था कि परमाणु जितने ज्यादा हिलेंगे उतना ही उनके लिये अपने नियत स्थान पर रह कर जटिल जीन बनाना मुश्किल होगा. अगर उसकी सोच सही है तो अधिक तापमान पर फल-मख्खियों को रखने पर उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) बढ़ जाना चाहिये.

१९१९ में उसने यही प्रयोग किया और पाया कि उसका सोचना सही था. तापमान के साथ उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) की संख्या बढ़ गयी. हालांकि, बहुत अधिक मात्रा में नहीं. तापमान को और बढ़ाने से वृद्धि अधिक नहीं हुई. अधिक तापमान पर फल-मख्खियां मरने लगीं. क्या तापमान के अलावा भी कोई चीज

है जो परमाणुओं को हिला सके और जीन की सही प्रतिलिपि (डुप्लीकेशन) बनाने की प्रणाली में बाधा डाल सके?

करीब २५-साल पहले ही एक्स-रे की खोज हुई थी. ये अत्यधिक ऊर्जा वाली किरणें हैं. अगर एक्स-रे परमाणुओं की श्रंखला पर पड़े तो परमाणु इतनी तेजी से कंपित होने लगेंगे कि शायद पूरी श्रंखला ही छितर-बितर हो जाय. और तो और एक्स-रे फल-मक्खियों की खाल को पार करके क्रोमोसोम तक बिना किसी रुकावट के पहुँच सकती हैं.

म्यूलर को लगा कि तापमान बढ़ाने की बजाय अच्छा होगा फल-मक्खियों पर एक्स-रे डाली जाय. इसका एक लाभ और है. तापमान बढ़ाने से सारे परमाणुओं पर असर पड़ता है जबकि एक्स-रे का असर सिर्फ उन्हीं परमाणुओं पर पड़ेगा जिनसे वह टकरायेगी. अगर एक्स-रे एक जीन पर पड़ेगी तो सिर्फ वही जीन टूटेगा, फल-मख्खी का बाकी शरीर प्रभावित नहीं होगा. इसका मतलब है वह फल-मक्खियों को बिना मारे उनके क्रोमोसोम पर ऊर्जा का प्रचण्ड उपयोग कर सकता है.

१९२६ तक यह स्पष्ट हो गया कि एक्स-रे ने वही किया जिसकी उसे संभावना थी. उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) की दर बहुत बढ़ गयी.

इस खोज का लाभ यह हुआ कि अब जीव-वैज्ञानिक तरह-तरह के उत्परिवर्तनों (म्यूटेशनों) का अध्ययन करने में सफल हुए. जिससे वे वंशानुक्रम को समझ सके, क्रोमोसोम के नक्शे बना सके, इत्यादि, इत्यादि. म्यूलर को अपने शोध कार्य के लिए १९४६ में नोबेल पुरुस्कार मिला.

इससे एक बात का और पता चला -- एक्स-रे और उस तरह के अन्य विकिरण मनुष्यों के लिये कितने हानिकारक हैं. ये क्रोमोसोम के काम को उलट-पुलट कर सकते हैं. तब से म्यूलर लोगों को बिना वजह एक्स-रे के प्रयोग की चेतावनी देने के काम में लग गया.

इससे यह भी पता लगा कि स्वाभाविक परिस्थितियों में उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) कैसे होता है.

जीव-जन्तु हमेशा अलग-अलग तरह की ऊर्जा से प्रभावित होते रहते हैं. अत्यधिक ऊर्जा वाले कण जिन्हें लौकिक-किरणें (कॉसमिक रेज) कहते हैं हमेशा पृथ्वी पर पड़ती रहती हैं. हमारे चारों तरफ सूक्ष्म मात्रा में रेडियो-धर्मी (रेडियो-एक्टिव) परमाणुओं से पैदा हुए ऊर्जा के कण और विकिरण भी मौजूद रहते हैं. सूर्य का प्रकाश और प्राकृतिक रूप से पैदा होने वाले रसायन भी हमारे स्पर्श में आते हैं. ये सब जीन की परफेक्ट प्रतिलिपि (डुप्लीकेशन) बनाने की प्रणाली में बाधा डाल सकते हैं.

इसका अर्थ है, मनुष्यों और दूसरे जीवित प्राणियों के हरेक जीन विभिन्न रूपों में पाये जाते हैं न कि सब एक जैसे. इससे आनुवंशिकता (हेरिडिटी) और भी जटिल विषय बन जाता है. जरा सोचो कितनी तरह की

नाकें, हाथ, कान, ऊंचाई, रंग, दांतों की बनावट, आवाज,..... इसी विभिन्नता के कारण हम एक दूसरे को सिर्फ उनकी आवाज, रूप, चलने के तरीके आदि से ही पहिचान लेते हैं.

अगर जीनों का म्यूटेशन न होता और सब जीन एक ही रूप में होते तो एक नस्ल के सब सदस्य बिलकुल एक जैसे ही दिखते.

हर जीवित प्राणी में उसके अपने सैकणों/हजारों जीन हैं जो एक दूसरे से अलग हैं. कोई जानवर तेजी से दौड़ सकता है, कुछ होशियार होते हैं, कुछ आसानी से छुप सकते हैं, कुछ को विशेष खाना चाहिये..... यह सब इसलिये कि हरेक जीव जीनों का अपना ही एक जटिल मिश्रण है.

इसका अर्थ है कि कुछ जानवर अपने जैसे दूसरे जानवरों की तुलना में अधिक दिन जी सकते हैं. कुछ खास जीन या जीनों का कम्बीनेशन आगे जाकर लाभदायक साबित हो सकता है. दूसरे जीन और उनके कम्बीनेशन खास तौर से बेकार होते हैं और जिन जानवरों में ये पाये जाते हैं उन्हें वे नुकसान ही पहुंचाते हैं जिनसे उनकी आयु कम हो जाती है.

जैसे जैसे वे जीव जंतु जिनमें बेकार जीन पाये जाते हैं मरते जाते हैं. इस तरह बेकार जीनों की संख्या भी कम होती जाती है. वैसे ये जीन कभी खत्म नहीं होते. कभी कभी वे नये म्यूटेशन के रूप में पैदा हो जाते हैं. परन्तु उनका विकास नहीं हो पाता.

उपयोगी जीन जिन जीव जन्तुओं में होते हैं वे उनके जीवन को अच्छा और लम्बा रखने में और अधिक बच्चे पैदा करने में (जिनमें उन्हीं जीनों के होने की अधिक संभावना है) सहायक होते हैं. ऐसे जीनों की संख्या बढ़ती जाती है और ये जीन जीव जंतुओं में सामान्य हो जाते हैं.

उपयोगी जीनों की वृद्धि और विकास एवं बेकार जीनों की कमी को प्राकृतिक-चयन (नेचुरल सेलेक्शन) कहते हैं. जीवित रहने लिये जीव-जंतु एक दूसरे से खाने, सुरक्षा, और संभोग के लिए मुकाबला करते हैं और अच्छे जीनों का चयन करते हैं जो आगे चलकर सामान्य जीन बन जाते हैं.
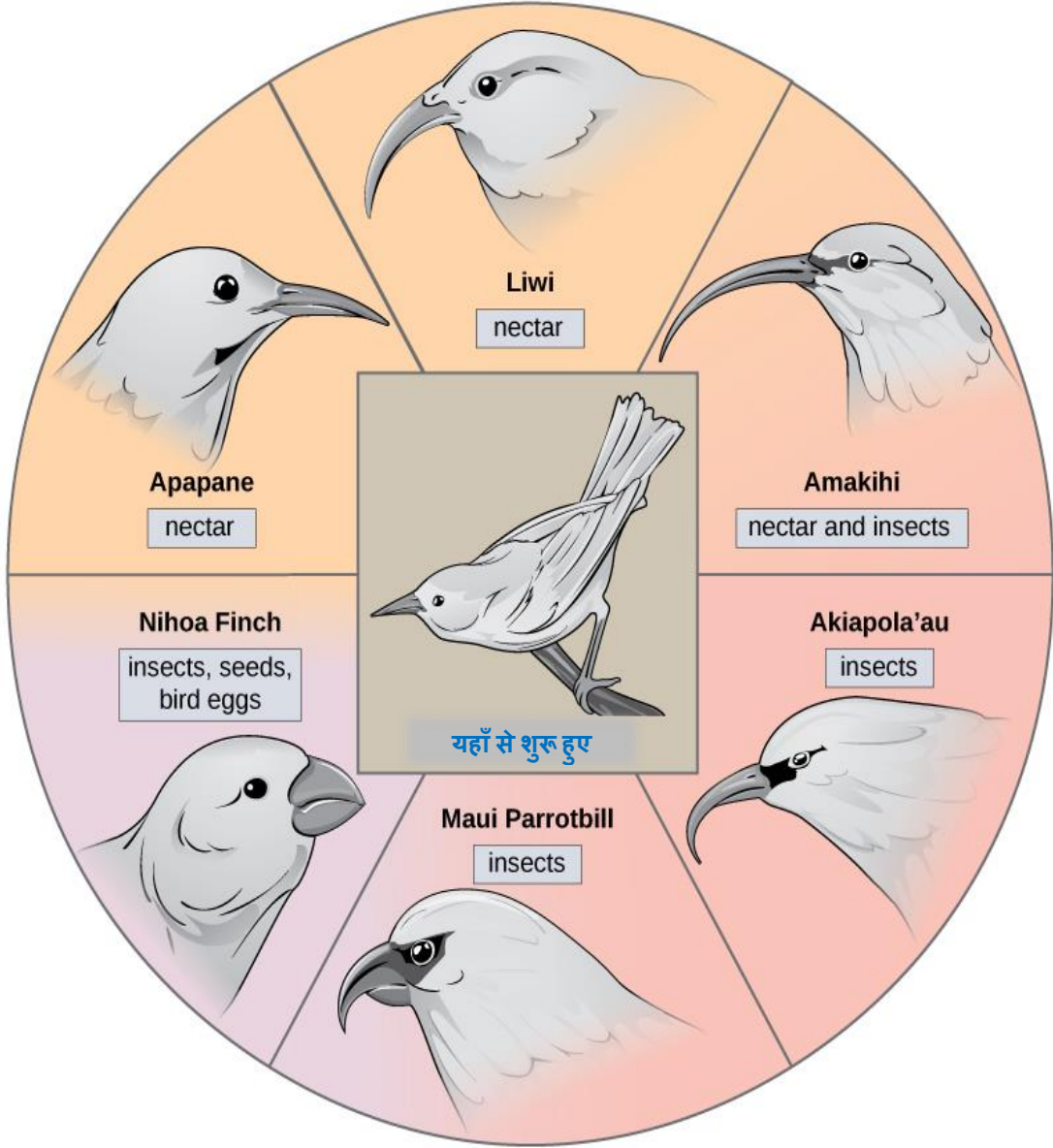
वक्र चोंच वाली हनी-क्रीपर चिड़िया फिंच-जैसे पूर्वज से विकसित हुई

ज्यादातर म्यूटेशनों का परिणाम होता है ख़राब और हानिकारक जीनों का पैदा होना. पर इससे कोई खास फर्क नहीं पड़ता. फर्क पड़ता है उन थोड़े से और लाभदायक म्यूटेशनों से जिनकी संख्या बढ़ती है.

हर पशु और पौधा म्यूटेशन और प्राकृतिक-चयन का अनुभव करता है जिसके कारण वह अपने परिवेश में अधिक कुशलता पूर्वक फिट हो पाता है. कई करोड़ वर्ष लग सकते हैं एक पशु-पक्षी को दूसरे अधिक कुशल पक्षी बनने में.

रेंगने वाले जन्तुओं को उड़ने वाले पक्षी और स्तन-धारी जीव बनने की धीमी-गति से क्रमागत विकास में करोड़ों बेतरतीब म्यूटेशनों और प्राकृतिक-चयन का हाथ रहा होगा. एक साधारण कीड़े-मकोड़े खाने वाले स्तनधारी जानवर (आधुनिक ट्री-श्रू जैसे) बन्दर, लीमर, और वानर के रूप में धीरे-धीरे विकसित हुए होंगे. कई करोड़ों वर्ष पहले, बन्दर जैसे किसी स्तन-धारी जानवर के जीन बेतरतीब म्यूटेशनों और प्राकृतिक-चयन द्वारा अंततः मानव रूप में विकसित हए होंगे.

और हमारी इस प्रक्रिया की समझ, अंशतः, शुरू हुई एक महंत के मटर के पौधे उगाने से क्योंकि वह अध्यापक बनने की परीक्षा पास न कर सका.

====== समाप्त=====

हिन्दी अनुवाद में प्रयोग किये गये शब्द

अंग्रेजी शब्द (English Word)	लिप्यंतरण (transliteration)	हिन्दी
Breeding	ब्रीडिंग	प्रजनन
Mutation	म्यूटेशन	उत्परिवर्तन
Heredity	हेरिडिटी	आनुवंशिकता
Chromosomes	क्रोमोसोम	क्रोमोसोम (गुण सूत्रों)
Evolution	इवोल्यूशन	क्रमागत-विकास
Inherited	इनहेरिटेड	आनुवंशिक
Inheritance	इनहेरिटेंस	वंशानुक्रम, विरासत
Botany	बॉटनी	वनस्पति विज्ञान
Sex Cells	सेक्स-सैल	लिंग-कोशिकायें
Cell	सैल	कोशिका
Multicellular organism	मल्टी-सेल्लुर ऑर्गेनिज्म	बहु-कोशकीय जीव
Duplication	डुप्लीकेशन	प्रतिलिपि
Cosmic-rays	कॉसमिक रेज	लौकिक-किरणें
Radio-active	रेडियो-एक्टिव	रेडियो-धर्मी
Natural Selection	नेचुरल सेलेक्शन	प्राकृतिक-चयन
Nucleus	न्यूक्लियस	नाभिक
Genes	जीन्स	जीन्स
Pistill	पिस्टिल	पुष्प-योनि
Ovule	ओव्यूल	बीजाणु
Egg Cell	एग-सेल	अंडा-कोशिका
Pollen	पोलन	पराग
Sperm Cell	स्पर्म-सेल	शुक्राणु-कोशिका
Fertilization	फर्टिलाइजेशन	गर्भाधान
Cross-pollination	क्रॉस-पॉलिनेशन	पार-परागण
Pollination	पॉलिनेशन	परागण
Self-Pollination	सेल्फ-पॉलिनेशन	स्व-परागण
Dominant	डोमिनेंट	प्रबल होगा
Recessive	रिसेसिव	दबा होगा
Multicellular Organism	मल्टी-सेल्लुर ऑर्गेनिज्म	बहु-कोशकीय जीव
Structure	स्ट्रक्चर	संरचना
Fruit Flies	फ्रूट-फ्लाइज	फल-मक्खियाँ
Fertilized Cell	फर्टिलाइज्ड सैल	निषेचित-कोशिका